अंकुश्री

विकल्प

मनजीत को अपने जीवन की घड़ियाँ याद आ रही थी। पढ़ाई से लेकर नौकरी तक उसकी पूरी जिन्दगी शहर में ही बीत गई थी। बचपन में शहर का वातावरण उतना बुरा नहीं था। लेकिन शहर कब धीरे-धीरे प्रदूषण की चपेट में आ गया। उन्हें पता ही नहीं चल पाया। प्रदूषित शहर के वे एक अंग बन गए थे और प्रदूषण के परोक्ष सहायक भी।

बाहर के कई अस्पतालों से घूमकर मनजीत अपने शहर के अस्पताल में आ गए थे। यह पता नहीं चल पा रहा था कि रोग क्या है? रोग पता नहीं चलने से उनकी चिकित्सा असाध्य हो गई थी। अस्पताल में पड़े-पड़े मनजीत ऊब गए थे। चिकित्सकों ने भी कह दिया था कि अस्पताल में रहने से कोई लाभ नहीं है, घर जा सकते हैं। अस्पताल एक आड़ था। लोगों से कहने का बहाना था कि चिकित्सा हो रही है। लेकिन घर आते ही बात खुल गई कि मनजीत अब कुछ दिनों के ही मेहमान रह गए हैं। जिसे पता चलता था, उनसे मिलने आ रहा था। उनसे मिलने वालों का घर में ताँता लगा हुआ था।

आने वाला हर कोई सांत्वना के दो शब्द बोल कर चला जाता था। मनजीत को जो भी देखने आता था, उससे वे खूब बात करते थे। बाद में आने वालों को यह ताकीद कर दी गई कि वे उनसे बात नहीं करें। घर वाले ही रोग, चिकित्सा और अस्पताल का इतिहास आगन्तुकों को बता कर उनकी जिज्ञासा शांत कर देते थे। मनजीत को आगन्तुकों से बात करने का मौका भी नहीं रहने दिया गया था। आगन्तुकों को वे सिर्फ टुकुर-टुकुर देखा करते थे। मन में उठे विचारों को वे दबा देते थे, क्योंकि बोलने की सख्त मनाही थी।

मनजीत के पिता का नाम मदनजीत था। उनके दो बेटे थे-सर्वजीत और मनजीत। सर्वजीत बड़े थे, जो गांव में रह कर खेती-गृहस्थी देखा करते थे। मनजीत छोटे थे, जो शहर में बस गए थे। मृत्यु शैय्या पर पड़े-पड़े मनजीत सोच रहे थे कि सर्वजीत उनसे आठ साल बड़े हैं। लेकिन उनको कोई बीमारी नहीं है। हष्ट-पुष्ट शरीर से उनकी आर्थिक संपन्नता साफ झलकती थी। लेकिन वास्तविकता कुछ और थी। गांव में वे खेती पर आश्रित थे और खेती इतनी नहीं थी कि उससे पूरे परिवार का भरण-पोषण हो सके। फिर भी वे पूर्णतः स्वस्थ थे। इसका कारण था गंवई वातावरण।

सर्वजीत सवेरे उठकर खेत जाते थे। वहां से हरा चारा लेकर आते और गायों-भैंसों को सानी-पानी देने के बाद उन्हें दुहते थे। उसके बाद नदी जाकर स्नान करते थे। घर आकर रोटी-दूध खाकर फिर काम पर लग जाते थे। दिन में उनका भोजन था चावल, अरहर की दाल, छाछ और ताजा सब्जी। अपने खेत की सब्जी थी। खूब खाते थे। गांव में चारों तरफ फैली हरियाली और शुद्ध हवा की ताज़गी का उन्हें भरपूर लाभ मिलता था और वे आनंदित रहते थे।

मनजीत को अपने जीवन की घड़ियाँ याद आ रही थी। पढ़ाई से लेकर नौकरी तक उसकी पूरी जिन्दगी शहर में ही बीत गई थी। बचपन में शहर का वातावरण उतना बुरा नहीं था। लेकिन शहर कब धीरे-धीरे प्रदूषण की चपेट में आ गया। उन्हें पता ही नहीं चल पाया। प्रदूषित शहर के वे एक अंग बन गए थे और प्रदूषण के परोक्ष सहायक भी।

टप!टप!!टप!!!

एक! दो!!तीन!!!

नल से तीन बूंद पानी गिरा। उसके बाद पानी गिरना बंद हो गया। मनजीत ने नल की टोंटी को पूरा खोल दिया था। लेकिन उससे भी कोई फायदा नहीं हुआ था। नल से पानी नहीं गिरा था। उसमें पानी था ही नहीं तो गिरता कहां से? वह समझ गए थे कि उस दिन फिर जलापूर्ति नहीं हुई है। पहले दो घंटा जलापूर्ति की जाती थी। लेकिन गर्मियों में मात्र दस-दस मिनट जलापूर्ति की जाती थी और किसी-किसी दिन वह भी नहीं हो पाती थी।

कल ही अखबार में सचित्र समाचार छपा था कि डैम में पानी नहीं है। डैम के बीच का थोड़ा भाग छोड़ कर चारों तरफ मिट्टी दिख रही थी, जिसमें दरारें भी पड़ी हुई थी। उसे याद है कि पिछले सालों में भी डैम में दरारें पड़ गई थीं। ऐसा पांच सालों से होता आ रहा

था। पहले डैम के किनारे दरारें पड़ती थी। लेकिन बीच में इतना पानी रहता था कि थोड़ी देर के लिए जलापूर्ति की जा सके। लेकिन पिछले साल तो गर्मी शुरू होते ही प्यास बुझाने लायक भी पानी की आपूर्ति नहीं हो पाई थी।

बात पिछले साल की ही है। मनजीत पानी की व्यवस्था में लगे हुए थे। वे बुधुआ के यहां गए थे। बुधुआ एक आदिवासी युवक था। था तो युवक ही, मगर अधेड़ से भी अधिक बड़ा दिखता था। गैर मजरूआ जमीन पर बनी झोपड़ियों में उसकी भी एक झोपड़ी थी। उसके परिवार में वह था और उसकी मां थी। झोपड़पट्टियों में रहने वाले लोगों में कोई ठेला चलाता था तो कोई मजदूरी करता था। साइकिल मिस्त्री, स्कूटर मिस्त्री से लेकर कार मिस्त्री तक वहां रहते थे। दो-तीन सौ झोपड़पट्टियां थीं। पहले नदी का पाट बहुत चौड़ा था। लेकिन उसे भर-भर कर दोनों ओर आवास बना दिए गए थे। आवासों के बनने की भी एक कहानी थी।

मनजीत को याद है कि नगर निगम में महमूद नाम का एक पार्षद हुआ करता था। उसने पांच-पांच सौ रूपए प्रति प्लॉट लेकर नदी की गैरमजरूआ जमीन को अपने दबदबे का लाभ उठाकर बंदोबस्त करना शुरू कर दिया था। बंदोबस्ती क्या थी? जिससे पांच सौ रूपए लेता था उसका नाम-पता एक कागज पर लिख लेता था। रूपए मिले, नाम अंकित हुआ और उसकी जमीन हो गई। महमूद ने जब जमीन की कीमत पांच सौ रूपए ली थी। उसकी कीमत आज दस हजार रूपए हो गई है, बल्कि उससे भी ज्यादा पन्द्रह-बीस हजार रूपए। जमीन बन्दोबस्ती की कमाई से ही महमूद ने नदी किनारे अपना एक आलीशान मकान खड़ा कर लिया था। उसके चार मंजिले मकान में पंद्रह-बीस किराएदार रहते थे, जिससे प्रति माह लाख रूपए से अधिक किराया आ जाता था।

बुधुआ के दरवाजे पर पहुंच कर मनजीत ने आवाज लगाई थी। अंदर से कोई जवाब नहीं मिला तो उन्होंने फिर एक बार जोर से आवाज लगाई, ''बुधुआ है जी'' उनकी आवाज सुनकर बगल वाले घर से एक औरत निकल कर बोली, ''बुधुआ पानी भरने गया है, अब आता ही होगा।''

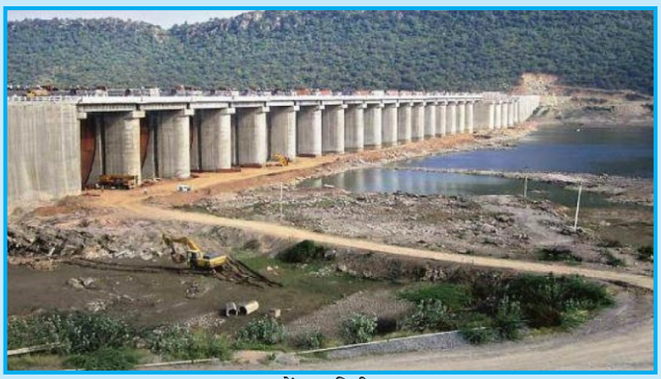

शुष्क ऋतु में जलविहीन जलाशय।

मनजीत बस्ती में ही रूक कर बुधुआ की प्रतीक्षा करने लगे थे। सामने पहाड़ी नदी थी, जिसमें कहीं-कहीं पत्थरों के बीच गड्ढ़ों में पानी था। मगर पानी बिल्कुल काला दिख रहा था। वह पानी आदमी के पीने-नहाने की कौन कहे, जानवर को पिलाने-नहाने के काम भी नहीं आता था। नदी में पॉलिथीन की रद्दी थैलियां भरी हुई थी। उन थैलियों को देखकर उनके मानस-पटल पर शहर की नालियों का दृश्य उभर आया। सभी नालियां पॉलिथीन की रद्दी थैलियों से पटी हुई थी। थैलियां सड़ नहीं पाती थी और इस कारण नाली का पानी सड़कों और गलियों में बहता रहता था।

उस पहाड़ी नदी की चौड़ाई बिल्कुल खत्म हो गई थी। कभी सैकड़ों फुट की चौड़ाई में बहने वाली उस नदी के दोनों ओर मकान बन गए थे। उनमें कई मकान दुमंजिला और तीन मंजिला थे। अनेक मकान अब भी झोपड़पट्टियों के रूप में ही थे। दबदबा और दौलत वाले लोग झोपड़पट्टी वालों को हटाकर वहां अपना बड़ा मकान बनाने के प्रयास में लगे रहते थे। कई झोपड़पट्टियों की जगह मकान बन भी गए थे। हर नया निर्माण थोड़ा-थोड़ा नदी की ओर बढ़ता जा रहा था। इससे नदी ने नाले का रूप ले लिया था। उसकी जलग्रहण क्षमता कम हो गई थी और जलछाजन क्षेत्र भी खत्म हो गया था। नदी में जहां-तहां जमा पानी से दुर्गंध आ रही थी। घरों की नाली नदी में बह रही थी। कुछ घरों के शौचालय का निकास भी सीधे नदी में ही था।

नदी बचाओ अभियान के तहत समय-समय पर नागरिकों द्वारा जागरूकता रैली निकाली जाती थी। विद्यालयी बच्चों, नागरिकों और सरकारी महकमों द्वारा कई बार नदी की बढ़ रही संकीर्णता और गंदगी के विरूद्ध आवाज उठाई जाती रही थी। ऐसे ही अवसर पर दबंगों और उनके बिचौलियों द्वारा झोपड़पट्टी वालों को डरा-धमका कर झोपड़पट्टी खाली करा दी जाती थी तथा आंदोलन खत्म होते ही झोपड़पट्टियों की जगह दबंगों के पक्के मकानों का निर्माण शुरू हो जाता था। यह सिलसिला मनजीत अपने आरंभिक जीवन से देखते आ रहे थे।

नदी के आस-पास का पूरा क्षेत्र गंदगी से बजबजा रहा था। मनजीत से अधिक देर तक वहां खड़ा नहीं रहा गया। वे वहां से चल दिए। अभी दस कदम ही बढ़े थे कि उन्हें बुधुआ आता हुआ दिख गया था। वह कंधे पर भार लटकाए चला आ रहा था। भार में बंधे टीन खाली थे। किसी के घर में पानी देकर लौट रहा था। नज़र मिलते बोला था, ''मालिक! कहां घूम रहे हैं?''

''मैं तुम्हीं को देख रहा था,'' मनजीत ने आगे कहा था, ''मेरे यहां भी पानी देना है। कम से कम दस-बारह भार तो दे ही दो!''

''मालिक! उतना पानी कहां से दे पाएंगे?' बुधुआ ने कहा, ''चार भार दे देंगे।''

''चार भार में क्या होगा?''

''पानी कहां से देंगे हूजूर? नदी सामने है, आप देख ही रहे हैं। जानवर भी इसका पानी नहीं पीता है और बस्ती वाले यहां नहा-धो नहीं सकते हैं।'' एक लंबी सांस लेने के बाद उसने आगे कहा था, ''मुहल्ले में दस चाम्पा नल है। उनमें से केवल तीन में पानी आता है, वह भी थोड़ा-थोड़ा। इसलिए उसके आस-पास रहने वाले लोग दूसरे लोगों को वहां से पानी नहीं लेने देते हैं।''

''तुम तो कुओं से पानी भरते हो?'' मनजीत ने टोका।

''यहां के पांच कुओं में से तीन सूख गए हैं। बचे हुए दो कुओं में से एक में केवल सुबह-सुबह पानी निकल पाता है। दिन में आधी-आधी बाल्टी करके थोड़ी-थोड़ी देर पर मुश्किल से पानी निकल पाता है। बचा एक कुआं। उस पर सैकड़ों लोगों की भीड़ जमा रहती थी।'' बुधुआ ने पानी की स्थिति का रोना रोते हुए आगे बताया, ''सुबह-सुबह दो घंटा तो ठीक रहता है। लेकिन उसके बाद वहां भी बाल्टी डालने पर चट्टान से टकराने लगती है। वहीं से हम चार भार पानी दे देंगे। उतना पानी लेने में ही मुझे दो घंटा से अधिक लग जाएगा।

बुधुआ की बातें सुनकर मनजीत की बोलती बंद हो गई थी। उन्हें चार भार पानी पर ही सहमत हो जाना पड़ा था। अधिक जोर देने से कहीं वह चार भार पानी भी नहीं मिलता तो मुश्किल हो जाता।

''मालिक! पैसे के लिए आपसे कभी कुछ कहना नहीं पड़ता है।'' बुधुआ ने कहा, ''चार भार पानी के अस्सी रूपए लगेंगे।''

''पहले तो तुम दस रूपए भार पानी देते थे?''

''हाँ मालिक! लेकिन अभी कुआं बहुत गहरा हो गया है और वह दूर भी तो बहुत है। बहुत मेहनत लग जाती है हुजूर!'' मनजीत ने बुधुआ को मौन स्वीकृति दे दी थी।

मनजीत जल्दी-जल्दी घर आ गए थे। तौलिया से देह पोंछ कर कार्यालय

जाने के लिए तैयार होने लगे थे। पानी के इंतजाम में देर हो जाने से बिना खाना खाए उन्हें कार्यालय जाना पड़ा था। पानी-पानी करने में बच्चों की पढ़ाई भी बाधित हो रही थी। घर में खाना-नाश्ता बनाने के बदले बाजार से बना-बनाया नाश्ता लाने की प्रवृत्ति बढ़ गई थी। पूरी गर्मी घर के कपड़े धुलने के लिए धोबी के यहां जाने लगे थे, वह भी काफी ऊँची दरों पर। कमोबेश घर-घर की यही स्थिति थी।

नदी बचाओ अभियान के तहत समय-समय पर नागरिकों द्वारा जागरूकता रैली निकाली जाती थी। विद्यालयी बच्चों, नागरिकों और सरकारी महकमों द्वारा कई बार नदी की बढ़ रही संकीर्णता और गंदगी के विरूद्ध आवाज उठाई जाती रही थी। ऐसे ही अवसर पर दबंगों और उनके बिचौलियों द्वारा झोपड़पट्टी वालों को डरा-धमका कर झोपड़पट्टी खाली करा दी जाती थी तथा आंदोलन खत्म होते ही झोपड़पट्टियों की जगह दबंगों के पक्के मकानों का निर्माण शुरू हो जाता था। यह सिलसिला मनजीत अपने आरंभिक जीवन से देखते आ रहे थे।

घर से मनजीत तीस मिनट देर से निकले थे। ऊपर से रास्ते में जाम मिल जाने से उन्हें काफी देर हो गई थी। चींटी की तरह धीमी गति से उनका स्कूटर रेंगता हुआ चल रहा था। चौक-चौराहों पर पहुंचने से काफी पहले यातायात ठप्प सा हो जाता था। दस पंद्रह मिनट में चौराहे पर पास मिल जाने पर वे अपने को भाग्यशाली समझने लगते थे। खड़े वाहन वाले सामने वाले वाहन को आगे बढ़ाने के लिए हॉर्न बजाते रहते थे। आगे रास्ता जाम दिखने पर भी हॉर्न बजाने वाले बाज नहीं आते थे। लंबी कतार लगी होने पर भी वाहनों के इंजन बंद नहीं होते थे। उनका इंधन जल रहा होता था। अधिकतर वाहन रह-रह कर हॉर्न बजा रहे होते थे।

यातायात के जाम रहने के बावजूद लोगों द्वारा हॉर्न बजाते रहना मनजीत को बहुत बुरा लगता था। ऐसी स्थिति में वे अपना स्कूटर बंद कर देते थे। लेकिन अन्य वाहनों के हॉर्न बजने और घर्र-घों, घर्र-घों तथा भर्र-भों, भर्र-भों करने से उन्हें लगता था कि कान फट जाएगा। स्टार्ट वाहनों में जल रहे ईंधन की गंध पूरे वातावरण में फैल जाती थी। उससे आंखों में जलन होने लगती थी। चलते वाहनों से उत्पन्न शोर या उसमें जल रहे ईंधन में एक गति होती है। मगर बाधित यातायात के कारण रूके हुए या धीमें-धीमें सरक रहे वाहनों से निकले शोर या धुंए में वह गति नहीं होती। एक-दो वाहन सरकते हुए जब आगे बढ़ते थे तो मनजीत को लगता कि सिगनल हो गया है। ऐसे में कभी-कभी वह भी अपना स्कूटर स्टार्ट कर देते थे। लेकिन फिर उन्हें स्कूटर तुरंत बंद करना पड़ता था। यही स्थिति अनेक वाहन चालकों की हुआ करती थी। किन्तु जब पता रहता था कि वाहन आगे बढ़ तो रहे हैं, मगर सिगनल नहीं हुआ है तो मनजीत अपना स्कूटर बिना स्टार्ट किए सरका कर आगे बढ़ जाते थे। बार-बार वाहन स्टार्ट करने और कुछ कदम पर जाकर उसे फिर बंद करते रहने से ईंधन की बरबादी होती थी। ऐसी बरबादी से आर्थिक नुकसान था ही, लेकिन इसे वे राष्ट्रीय नुकसान के रूप में अधिक देखते थे। वे करते भी क्या?

ऐसे में जब मनजीत कार्यालय पहुंचते थे तो काफी देर हो चुकी होती थी। साहेब ने खोजा होगा, यह सोच कर उनकी हृदय गति तेज हो जाती थी। घड़कते दिल से वे कार्यालय में पहुंचते थे, लेकिन जब पता चलता था कि साहेब ने उन्हें अभी तक नहीं खोजा है तो उनके मन को बहुत शांति मिलती थी। वे पंखे के सामने कुछ देर सुस्ताने के बाद अपने काम में लग जाते थे।

यात्रा की थकान से वे पूरी तरह निपट भी नहीं पाते थे कि बिजली गुल हो जाती थी। बिजली कब आएगी पता नहीं रहता था। दो मिनट में भी आ सकती थी और दो घंटे बाद भी, प्रतीक्षा बेकार हो सकती थी। यह रोज की बात थी। उस अनिश्चय से कार्य बाधित नहीं हो इसके लिए कार्यालय में जेनरेटर की व्यवस्था कर दी गई थी, और इसके लिए दैनिक मजदूरी पर एक आदमी नियुक्त कर दिया गया था। उसे लोग जेनरेटर वाला कहते थे। बिजली गुल होते ही जेनरेटर वाला जेनरेटर स्टार्ट कर देता था। जेनरेटर स्टार्ट होते ही कार्यालय का पूरा वातावरण भर्रर-भर्र---र--अ- की आवाज से गुंजित हो जाता था। जेनरेटर से निकला थोड़ा-सा धुँआ खिड़की के रास्ते अंदर आकर पूरे कार्यालय का वातावरण दूषित कर देता था। जेनरेटर की आवाज भी कार्यालय के अंदर समा जाती थी। लेकिन कर्मचारी उस गंध और शोर के मिश्रित प्रभाव के अभ्यस्त हो गए थे। तन-मन पर उसके कुप्रभाव से निश्चिंत कर्मचारी अपने कार्य में व्यस्त रहते थे। मनजीत के बैठने की जगह जेनरेटर की विपरीत दिशा में थी। इसलिए वह उसके शोर और गंध के प्रभाव से थोड़ी दूर थे। जेनरेटर से कम्प्यूटर, पंखा और रोशनी की व्यवस्था हो जाती थी। बिजली गुल होने पर अगल-बगल के कार्यालयों में भी जेनरेटर चलने लगता था। कार्यालय का काम तो सुचारू हो जाता था, लेकिन वातावरण में एक प्रकार की उमस भर जाती थी। कानों में शोर गूंजता रहता था और नथूनों में गंध समा जाती थी, जहां उसका असर काफी देर तक बसा रहता था।

शाम को कार्यालय से घर वापसी में भी मनजीत को यातायात की परेशानियां झेलनी पड़ती थी। वे घर पहुंचने के थोड़ी देर बाद स्थिर हो पाते थे। उसके बाद पत्नी सुचिता चाय लेकर आ जाती थी। बच्चे पढ़ रहे होते थे। चाय पीने के बाद पति-पत्नी दोनों बाहर टहलने निकल जाते थे। उनका यह रोज का कार्य हो गया था। ''शांति अब शादी योग्य हो गई है। उसकी शादी इस साल हो जाती तो अगले साल सुषमा की भी शादी कर देते।'' सुचिता ने टहलते समय एक दिन मनजीत से कहा था।

वाहनों से बढ़ता प्रदूषण

तब मनजीत ने कहा था, ''तुम्हारी चिन्ता वाजिब है। लेकिन मैं अपनी बेटियों की शादी शहर में नहीं करूंगा। शहर की आबादी रोज बढ़ रही है। यहां रहने से सिर्फ शहरी कहलाने का सुख भर मिल पाता है। लेकिन गांव के लोग सचमुच कितना सुखी हैं, वहां रहने पर ही यह पता चल पाता है। गांव की जलवायु अभी प्रदूषित नहीं हुई है। वहां के वातावरण में शोर का अभाव है। लोगों का व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण है।'' मनजीत ने आगे कहा था, ''मैं भले ही गांव में नहीं रह पाया, लेकिन अपनी बच्चियों को इस सुख से वंचित नहीं होने दूंगा।''

कुओं से जल निकासी

सुचिता पढ़ी-लिखी महिला थी। ओजोन-परत में हुए छेद और भू-मण्डल के तापमान में हुई वृद्धि से वह अवगत थी। तुरंत बोली, ''मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं। अपनी बेटियों की शादी महानगर तो दूर, किसी बड़े नगर में भी नहीं करूंगी। भैयाजी का परिवार गांव में रहता है। उन लोगों का स्वास्थ्य और सौन्दर्य किसी शहरी से बहुत अच्छा है। गांव में रहने वालों को शहर भले अजूबा लगता हो, मगर मैं बेटियों का रिश्ता शहर में हरगिज नहीं करूंगी।''

सुचिता की बात सुनकर मनजीत ने कहा, ''तुम्हारी सोच की मैं कद्र करता हूं। लेकिन गांव में रोजगार की कमी है। रोजी-रोटी के लिए तो शहर आना ही होगा?''

''देखिए! शहर में रहना और रोजी-रोटी के लिए शहर आना-दोनों बिल्कुल अलग बातें हैं। सुचिता ने ये बातें यदि पांच-सात साल पहले कही होती तो मनजीत को अच्छी नहीं लगती। लेकिन अब तो मनजीत को भी शहर से ऊब हो गई थी।

बात कई वर्ष पुरानी थी। मनजीत ने अपनी दोनों बेटियों की शादी गांव में ही की थी। उनके दोनों दामाद शहर में कार्यरत थे, जिनका गांव में आना-जाना लगा रहता था। शहर में रहते हुए भी दोनों अपने-अपने गांव से जुड़े हुए थे। मनजीत की बेटियां भी मौका-कुमौका शहर चली जाती थी। उन्हें शहरी ग्रामीण अथवा ग्रामवासी शहरी कहा जा सकता था।

गांव में मनजीत की कोई संपत्ति नहीं थी। अपने हिस्से की जमीन-जायदाद वे बहुत पहले बेच चुके थे। पूरा जीवन शहर में बिता कर अब शहरी संपत्ति को बेच कर गांव में नए सिरे से बसना आसान काम नहीं था। गांव में चिकित्सीय सुविधा भी उपलब्ध नहीं थी, जो अब उनके लिए नितांत आवश्यक हो गई थी।

रात में मनजीत की तबीयत अचानक खराब हो गई थी। उन्हें अस्पताल जाना पड़ था। बुढ़ापा आने के बाद शरीर अपने नियंत्रण में नहीं रह कर चिकित्सकों के नियंत्रण में चला जाता है। रातभर भाग-दौड़ लगी रही। छाती में दर्द था। लगता था कि कोलोस्ट्रॉल कुछ अधिक ही बढ़ गया है। एंजाइना पेन से वे छटपटाने लगे। उनका रक्तचाप भी बढ़ा हुआ था और मधुमेह की मात्रा भी अत्यधिक हो गई थी। उन तीनों का एक ही उपाय था। शारीरिक श्रम में लगे रहना, जो बिना स्वस्थ हुए उनके लिए संभव नहीं था। स्वस्थ होने की चिकित्सकीय व्यवस्था यही थी कि चिकित्सकों के संपर्क में रहकर उनसे बराबर परामर्श लेते रहा जाए उनकी द्वारा बताई हुई दवाइयां खाती रही जाएं।

इन्हीं स्थितियों में मनजीत अस्पताल में एडमिट हुए थे। लेकिन चिकित्सकों के कथनानुसार अब उनका स्वस्थ्य होना बहुत आसान नहीं था। मधुमेह अधिक बढ़ जाने के कारण उनकी आंखों की रोशनी भी कम होने लगी थी। रक्तचाप बढ़ने के कारण किसी से वे सही ढंग से और भर मुंह बात नहीं कर पाते थे। चिड़चिड़ापन और तनाव उनके जीवन के अंग बन गए थे। इससे उनके साथ रहने वालों को भी झुंझलाहट की आदत लग गई थी। मनजीत की चिकित्सा बहुत कठिन हो गई थी। ऐसी परिस्थितियों में ही चिकित्सकों ने उन्हें घर ले जाने की सलाह दी थी।

वे घर आ गए थे और शैय्या पर पड़े हुए थे। उन्हें देखने वालों का ताँता लगा हुआ था। भरा-पूरा परिवार था, सगे-संबंधियों की भी कमी नहीं थी। लेकिन जो भी आता, उनकी हालत देख-पूछ कर चला जाता था। बाहर से आने वाले कुछ दिन रूक भी जाते थे। रोगी की देखभाल! ऊपर से मेहमानों की आवभगत। पूरा परिवार परेशान था। मेहमानों के आने पर घर में पहले खुशी होती थी। आने वाला भी दैनिक कार्यों में परिवर्तन महसूस करके खुश होता था। लेकिन अब स्थिति भिन्न हो गई थी। एक तो मेहमानों को कहीं आने-जाने की फुर्सत नहीं बची है और दूसरे, जो आते हैं उनका पूर्व की भांति स्वागत नहीं हो पाता है। लेकिन वे बीमारी से परेशान थे। कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

बड़े भाई सर्वजीत भी आए हुए थे। आते ही उन्होंने जिद्द पकड़ ली कि मनजीत को वे गांव ले जाएंगे। उन्होंने किसी की बात नहीं मानी। वे मनजीत को अपने साथ लेकर गांव चले गए। वहां भी वे चिकित्सकों द्वारा बताई गई पूर्व की दवाइयां खाते रहे। सर्वजीत उन्हें सुबह-सुबह नदी-स्नान के लिए ले जाने लगे। दो सप्ताह में ही चमत्कार हो गया। मनजीत के स्वास्थ्य में तेजी से सुधार होने लगा। महीने भर में वे शैय्या छोड़ कर सामान्य लोगों की तरह उठने-बैठने और चलने लगे।

मनजीत काफी संवेदनशील व्यक्ति थे। वे हर बात पर गंभीरतापूर्वक सोचा करते थे। जब वे पूरी तरह स्वस्थ हो गए तो उन्होंने गांव के युवकों की बैठक बुलाई। बैठक में विमर्श के दो विषय रखे गए-'शहर और गांव के जीवन में अंतर' और 'गांव में रोजगार का विकल्प।'

बैठक में तरह-तरह के विचार आए। पारंपरिक विचारों से हटकर अनेक नए विचार भी आए। गांव में गाय-भैंस पालने वालों की कमी नहीं थी। लेकिन पशुपालन की नई पद्धति उन्हें मालूम नहीं थी। नदी-तालाबों में मछली पकड़ी जाती थी, लेकिन उन्हें मछली-पालन का नया ढंग मालूम नहीं था। गांव में शहद का उत्पादन होता था लेकिन उन्हें इटालियन मधुमक्खियों और बक्से में मधुमक्खी पालने की विशेष जानकारी नहीं थी। कृषि गांव का मुख्य आधार जरूर थी, लेकिन वे वैज्ञानिक ढंग से कृषि नहीं करते थे। गांव में पेड़ तो थे, मगर ग्रामीणों को बंजर भूमि पर हरियाली लाने का ढंग पता नहीं था। खेतों की मेंड तो थी मगर उन पर पौधे नहीं लगे हुए थे। नदी-तालाबों का प्रदूषण तो हो रहा था, मगर उनकी सफाई का ढंग उन्हें मालूम नहीं था। बैठक में यह तय किया गया कि गांव वालों को नए ज्ञान और तकनीक की जानकारी दिलाई जाए।

मनजीत ने शहर के कई मित्रों-परिचितों को गांव में बुलवा कर ग्रामवासियों को प्रशिक्षण दिलाना शुरू किया। शहर में मृत्यु शैय्या पर पड़े रहने वाला व्यक्ति गांव आने पर वहां के लोगों का मसीहा बन गया था। साल पूरा होते-होते गांव का रंग-रूप बदल गया। सर्वजीत गांव में हुए परिवर्तन का श्रेय मनजीत को दे रहे थे। लेकिन मनजीत का कहना था कि यह सारा कुछ सर्वजीत के कारण हुआ है, क्योंकि वे ही उन्हें गांव में लाए थे।

सपंर्क करें:
अंकुश्री
प्रेस कॉलोनी, सिदरौल,
नामकुम, राँची (झारखंड)-834 010
मो. 8809972549
ईमेलः
ankushreehindiwriter@gmail.com